[2008] 3 S.C.R. 796

रेखा पटेल

बनाम

पंकज वर्मा व अन्य

(आपराधिक अपील संख्या 428/2008)

मार्च 3, 2008

[डॉ. अरिजीत पासायत और जे. एम. पांचाल, जे. जे.]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 438 - प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने और गिरफ्तारी पर रोक लगाने की मांग वाली रिट याचिका- उच्च न्यायालय ने उचित अदालत द्वारा अग्रिम जमानत देने का आदेश दिया और यदि जमानत देने से इन्कार कर दिया गया तो आरोपी को व्यक्तिगत मुचलके पर रिहा करने का निर्देश दिया गया- अपील पर निर्णित किया गया किः अग्रिम जमानत इसलिए नहीं दी जाएगी क्योंकि धारा 438 संबंधित राज्य (उत्तर प्रदेश) में लागू नहीं है- अन्यथा भी व्यक्तिगत मुचलके पर रिहाई की सुरक्षा स्वीकार्य नहीं है- हालांकि आरोपी को बाद में सक्षम अदालत द्वारा जमानत दे दी गई थी, इसलिए आदेश में हस्तक्षेप आवश्यक नहीं पाया गया।

प्रत्यर्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की और उनके खिलाफ दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने और रिट याचिका के निपटारे तक गिरफतारी पर रोक लगाने की मांग की। उच्च न्यायालय ने गिरफतारी पर रोक लगाने से इंकार कर दिया लेकिन आदेश दिया कि यदि याचिकाकर्ता निचली अदालतों में अपनी उपस्थिति देते हैं या उनके समक्ष पेश होते हैं और जमानत पर रिहाई के लिए आवेदन करते हैं तो उसका निपटारा किया जाना चाहिए और यदि जमानत पर रिहाई के लिए उनका मामला उचित नहीं पाया जाता है तो उन्हें निजी मुचलके पर रिहा किया जाएगा।

न्यायालय द्वारा अपील का निपटारा करते हुए अभिनिर्धारित किया गयाः

1. वर्तमान में धारा 438 द.प्र.सं. उत्तरप्रदेश राज्य में लागू नहीं होती है। अन्यथा भी, अभियुक्त के द्वारा आत्मसमर्पण करने व उसकी जमानत आवेदन खारिज होने के पश्चात उच्च न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए प्रकृति का संरक्षण नहीं दिया जा सकता है। [पैरा 7] [798-जी; 799-ए]

अद्री धरण दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 2005 (4) एस.सी.सी. 303 - का सहारा लिया।

2. हालांकि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्देश के अनुक्रम में प्रत्यर्थियों के द्वारा जमानत आवेदन प्रस्तुत किए जाने पर जमानत दी गई है, यह अदालत अपील में हस्तक्षेप करने से

इनकार करता है; लेकिन सही मापदंडों को इंगित करने के लिए इस पर विचार किया जाना आवश्यक है ताकि उच्च न्यायालय द्वारा की गई गलती दोहराई नहीं जाए। [पैरा 8 और 9] [803-सी, डी]

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील 428/2008

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के Cri. Misc. W.P. No. 13167/2006 निर्णय व आदेश दिनांक 7.11.2006 से उद्भव

अपीलार्थी के लिए गुडविल इंडीवर और जेड. के. फैज़ान।

प्रत्यर्थियों की ओर से शकील अहमद सैयद, मनोज के. द्विवेदी और अनुव्रत शर्मा।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डाॅ. अरिजीत पासायत द्वारा दिया गया।

1. अपील की अनुमति दी गई ।

2. इस अपील में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रस्तुत एक याचिका पर पारित आदेश को चुनौती दी गई है।

3. अपीलार्थी का विवाह प्रत्यर्थी संख्या 1 से 12.11.2005 को हुआ था। अपीलार्थी के द्वारा जवान पुलिस थाना, जिला अलीगढ में यह आरोप लगाते हुए एक परिवाद पेश किया गया था कि दहेज की मांग पूरी न करने पर

उसे परेशान किया जा रहा था। अपीलार्थी के परिवाद पर प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 277/2006 भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में भा.दं.सं.) की धारा 498ए, 323, 504 एवं 506 तथा दहेज निषेध अधिनियम 1961 (संक्षेप में दहेज अधिनियम) की धारा 3/4 के अपराध में दर्ज की गई। प्रत्यर्थी संख्या 1 से 6 के द्वारा एक रिट याचिका उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्ध करने व रिट याचिका के लंबित रहने तक गिरफतारी पर रोक लगाने के लिए दायर की गई। रिट याचिका दिनांक 01.11.2006 को दायर की गई थी। दिनांक 07.11.2006 को उच्च न्यायालय द्वारा गिरफतारी पर रोक लगाने के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया गया परंतु निम्नलिखित आदेश पारित किया गयाः

> "मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, यदि याचिकाकर्ता निचली अदालत के समक्ष अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं या उन्हें पेश किया जाता है और पुलिस थाना जवान, जिला अलीगढ में दर्ज प्रकरण संख्या 277/2006 अंतर्गत धारा 498ए, 323, 504 और 506 भारतीय दंड संहिता में जमानत के लिए आवेदन किया जाता है तो आवेदन पर शीघ्र सुनवाई की जाकर आवेदन को विधि अनुसार निस्तारित किया जाएगा तथा याचिकाकर्ता 1 से 5 के मामले में यदि विद्वान मजिस्ट्रेट उन्हें जमानत पर रिहा

करना उचित नहीं पाते हैं तो उन्हें प्रत्येक को 30,000/- रूपए के व्यक्तिगत मुचलके पर रिहा किया जाएगा और वे सत्र न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत उनकी जमानत याचिका, यदि कोई, के अंतिम निस्तारण तक व्यक्तिगत मुचलके पर रहेंगे तथा न्यायालय जिसका 07 दिवस के भीतर निस्तारण करेगा।"

4. अपीलार्थी के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क रखा गया है कि वस्तुतः धारा 438 दंड प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में दं-प्र-सं) के तहत शक्ति का प्रयोग किया गया है। यह इंगित किया गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य में धारा 438 दं.प्र.सं. लागू नहीं होती है।

5. प्रत्यर्थी संख्या 7 से 9 के लिए विद्वान वकील ने तर्क रखा है कि उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्देश स्पष्ट रूप से अद्री धरण दास बनाम पश्चिम राज्य बंगाल (2005 (4) एससीसी 303) में इस न्यायालय के द्वारा किए गए निर्णय से विपरीत है।

6. प्रत्यर्थी संख्या 1 से 6 को नोटिस की तामील के बावजूद उनकी और से कोई उपस्थित नहीं है।

7. जैसा कि विद्वान वकील अपीलार्थी द्वारा तर्क दिया गया है, वर्तमान में धारा 438 दं.प्र.सं. उत्तरप्रदेश राज्य में लागू नहीं होती है। अन्यथा भी, जैसा कि अद्री धरण दास के मामले में उल्लेख किया गया है, अभियुक्त के

आत्मसमर्पण और उसके जमानत आवेदन की अस्वीकृति के बाद, उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त प्रकृति का संरक्षण नहीं दिया जा सकता है। इस संदर्भ में आद्री धरन दास (उपर्युक्त) के मामले के पैराग्राफ 7, 8, 9 10, 11, 12 और 13 प्रासंगिक हैं। वे इस प्रकार हैं:

> "7. संहिता की धारा 438 जो सुविधा देती है, उसे आम तौर पर 'अग्रिम जमानत' कहा जाता है। विधि आयोग के द्वारा अपनी 41वीं रिपोर्ट में इस्तेमाल की गई यह अभिव्यक्ति न तो धारा 438 में और न ही इसके हाशिये की टिप्पणी में उपयोग की जाती है। लेकिन अभिव्यक्ति 'अग्रिम जमानत' यह संकेत देने का एक सुविधाजनक तरीका है कि गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत के लिए आवेदन करना संभव है। जमानत का कोई भी आदेश केवल आरोपी की गिरफ्तारी के समय से ही प्रभावी हो सकता है। व्हार्टन का कानून शब्दकोश 'जमानत' को 'गिरफतार किए गए व्यक्ति को उसकी उपस्थिति के लिए प्रतिभूति पर रिहा करने' के रूप में समझाया गया है। इस प्रकार जमानत का आशय मूल रूप से परिरोध से मुक्ति है, विशेषतः पुलिस की हिरासत से। जमानत के एक सामान्य आदेश और संहिता की धारा 438 के तहत एक आदेश के बीच अंतर यह है कि जहां

सामान्य आदेश गिरफ्तारी के बाद दिया जाता है, और इसलिए इसका मतलब पुलिस की हिरासत से रिहाई है, वहीं धारा 438 के तहत एक आदेश गिरफ्तारी की प्रत्याशा में दिया जाता है और इसलिए गिरफ्तारी के समय से ही प्रभावी होती है। (देखें: गुर बख्श सिंह बनाम पंजाब राज्य 1980(2) एससीसी 565)। संहिता की धारा 46(1) , जो इस बात से संबंधित है कि गिरफ्तारी कैसे की जानी है, प्रावधान करती है कि गिरफ्तारी करते समय पुलिस अधिकारी या ऐसा करने वाला अन्य व्यक्ति "गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के शरीर को वास्तव में छूएगा या परिरोध करेगा, जब तक कि ऐसे व्यक्ति द्वारा अपने शब्द या कार्य द्वारा स्वयं को अभिरक्षा में समर्पित न कर दिया हो"। संहिता की धारा 438 के तहत आदेश का उद्देश्य संहिता की धारा 46(1) के अनुसार स्पर्श या अन्य परिरोध से सशर्त प्रतिरक्षा प्रदान करना है। उच्चतम न्यायालय ने बालाचंद जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य (AIR 1977 SC 366) में अभिव्यक्ति 'अग्रिम जमानत' को मिथ्या नाम बताया है। यह सर्वविदित है कि गिरफ्तारी के बाद जमानत होती है, यदि न्यायालय पहले आदेश देने के बारे में सोचता है तो इसका आशय यह है कि गिरफ्तारी की स्थिति में व्यक्ति को जमानत पर रिहा

कर दिया जाएगा। जाहिर तौर पर जब तक आरोपी को गिरफ्तार नहीं किया जाता तब तक जमानत पर रिहाई का कोई सवाल ही नहीं है, और इसलिए, गिरफ्तारी होने पर ही आदेश प्रभावी होता है। धारा 438 के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्ति कुछ हद तक असाधारण है और यह केवल असाधारण मामलों में है जहां ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति को झूठा फंसाया जा सकता है या जहां यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि आरोपी व्यक्ति द्वारा स्वतंत्रता का अन्यथा दुरुपयोग करने की संभावना नहीं है तो धारा 438 के तहत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। यह शक्ति महत्वपूर्ण प्रकृति की होने के कारण यह केवल न्यायिक मंचों के उच्च स्तर, यानी सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय को सौंपी गई है। यह गैर-जमानती अपराध के प्रत्याशित आरोप के मामले में प्रयोग की जाने वाली शक्ति है। संहिता की धारा 438 द्वारा जिस उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है वह यह है कि जिस क्षण किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है, यदि उसने पहले ही सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय से आदेश प्राप्त कर लिया है, तो उसे बिना जेल भेजे तुरंत जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा।"

8. धारा 438 और 439 अलग-अलग क्षेत्रों में लागू होती हैं। संहिता की धारा 439 इस प्रकार है:

> "439. (1) एक उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय निर्देश दे सकता है -
>
> (ए) कि किसी अपराध के आरोपी और हिरासत में मौजूद किसी भी व्यक्ति को जमानत पर रिहा किया जा सकता है, और यदि अपराध धारा 437 की उप-धारा (3) में निर्दिष्ट प्रकृति का है, तो वह कोई भी शर्त लगा सकता है जिसे वह उस उपधारा में उल्लेखित उद्देश्यों के लिए आवश्यक समझता है;
>
> (बी) कि किसी भी व्यक्ति को जमानत पर रिहा करते समय मजिस्ट्रेट द्वारा लगाई गई किसी भी शर्त को रद्द कर दिया जाए या संशोधित किया जाए।"
>
> (जोर देने के लिए रेखांकित)

9. उक्त प्रावधानों को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि संहिता की धारा 439 के संदर्भ में आवेदन करने के लिए एक व्यक्ति को हिरासत में होना आवश्यक है। संहिता की धारा 438 "गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने के निर्देश" से संबंधित है।

10. सलाउद्दीन अब्दुलसमद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य (AIR 1996 SC 1042) में इस प्रकार टिप्पणी की गई:

> "गैर-जमानती मामलों में गिरफ्तारी की प्रत्याशा में अग्रिम जमानत दी जाती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि नियमित अदालत, जो अपराधी पर मुकदमा चलाती है, को दरकिनार किया जाए और इसी कारण से उच्च न्यायालय ने जमानत जारी रखने के लिए बाहरी तारीख देने और इसकी समाप्ति की तारीख पर याचिकाकर्ता को नियमित अदालत के समक्ष जमानत प्रस्तुत करने का उचित निर्देश दिया। यह एक सही प्रक्रिया है क्योंकि यह समझने योग्य है कि जब सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय के द्वारा जिस चरण में अग्रिम जमानत दी जाती है, उस चरण में जांच अधूरी होती है और इसलिए, कथित अपराधी के खिलाफ सबूत की प्रकृति के बारे में अग्रिम जमानत देने वाली अदालत को जानकारी नहीं होती है। ऐसे में यह आवश्यक है कि इस तरह के अग्रिम जमानत आदेश केवल सीमित अवधि के हों और आमतौर पर उस अवधि या विस्तारित अवधि की समाप्ति पर अग्रिम जमानत देने वाली अदालत को मामले से निपटने के लिए नियमित अदालत पर, जांच में प्रगति होने

पर उसके सामने रखे गए सबूतों या आरोप-पत्र की सराहना के लिए छोड़ देना चाहिए।" (जोर दिया गया)

11. केएल वर्मा बनाम राज्य एवं अन्य में (1996 (7) SCALE 20) इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"इस न्यायालय ने यह पाया है कि अग्रिम जमानत गैर जमानती मामलों में गिरफतारी की प्रत्याशा में दी जाती है लेकिन इसका आशय यह नहीं होता कि नियमित अदालत जिसके द्वारा मामले को चलाया जाना है, को दरकिनार किया जाए। इसलिए यह इंगित किया गया कि इस तरह के अग्रिम जमानत आदेश केवल सीमित अवधि के होने चाहिए और ऐसी अवधि या विस्तारित अवधि की समाप्ति पर सामान्यतः अग्रिम जमानत देने वाली अदालत को मामले को नियमित अदालत पर मामले के साक्ष्य के मूल्यांकन या जांच में प्रगति होने पर प्रस्तुत आरोप पत्र के आधार पर निस्तारित करने के लिए छोड देना चाहिए। इसके द्वारा न्यायालय के द्वारा यह बताया गया है कि अग्रिम जमानत का आदेश विचारण के अंत तक नहीं रहता है बल्कि इसे सीमित अवधि का होना चाहिए ताकि नियमित अदालत को दरकिनार नहीं किया जा सके। सीमित अवधि का निर्धारण

मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और आरोपी को जमानत के लिए नियमित अदालत में जाने के लिए पर्याप्त समय देने और नियमित अदालत को जमानत आवेदन निर्धारित करने के लिए पर्याप्त समय देने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जब तक जमानत आवेदन का निपटारा किसी न किसी तरह से नहीं हो जाता, तब तक अदालत आरोपी को अग्रिम जमानत पर रहने की अनुमति दे सकती है। इसे अलग ढंग से कहें तो, अग्रिम जमानत एक एेसी अवधि के लिए दी जा सकती है जो जमानत आवेदन के निपटारे की तारीख तक या उसके कुछ दिनों तक भी बढ़ाई जा सकती है ताकि आरोपी व्यक्ति चाहें तो ऊपरी अदालत में जा सकें।"

(जोर दिया गया)

12. निर्मल जीत कौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य (2004 (7) SCC 558) और सुनीता देवी बनाम बिहार राज्य और अन्य 2003 की SLP (Crl.) No.4601 से उत्पन्न आपराधिक अपील जिसका दिनांक 6.12.2004 को निपटारा किया गया में केएल वर्मा के मामले (उपर्युक्त) में कुछ अस्पष्ट स्थिति देखि गयी थी। यह इस टिप्पणी से संबंधित है "या उसके कुछ दिनों बाद भी आरोपी व्यक्तियों को उच्चतर न्यायालय में जाने

में सक्षम बनाया जा सके, यदि वे चाहें तो"। यह माना गया था कि उपरोक्त टिप्पणियों से संहिता की धारा 439 की आवश्यकता समाप्त नहीं होती है। धारा 439 तभी क्रियान्वित होती है जब कोई व्यक्ति "हिरासत में" होता है। केएल वर्मा मामले (उपर्युक्त) में सलाउद्दीन के मामले (सुप्रा) का संदर्भ दिया गया था। उक्त मामले में ऐसा कोई संकेत नहीं था जैसा कि केएल वर्मा के मामले (सुप्रा) में दिया गया था, कि यदि आरोपी चाहें तो उन्हें उच्चतर न्यायालय में जाने के लिए कुछ दिन दिए जा सकते हैं। उक्त टिप्पणी से यह नहीं कहा जा सकता कि संहिता की धारा 439 की वैधानिक आवश्यकता पूरी तरह से निष्क्रिय कर दी गई हो।

13. धारा 439 की स्पष्ट भाषा को ध्यान में रखते हुए तथा इस न्यायालय के निर्णय निरंजन सिंह और अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे और अन्य (AIR 1980 SC 785), के मद्देनजर इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि जब तक कोई व्यक्ति हिरासत में नहीं है, संहिता की धारा 439 के तहत जमानत के लिए आवेदन सुनवाई योग्य नहीं होगा। यह प्रश्न कि किसी व्यक्ति को संहिता की धारा 439 के अर्थ में हिरासत में कब कहा जा सकता है, उपरोक्त निर्णय में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था।"

8. हालाँकि, राज्य के विद्वान वकील द्वारा कथित किया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश के अनुसार प्रत्यर्थियों ने जमानत के लिए

आवेदन किया था और संबंधित सत्र न्यायाधीश द्वारा उन्हें जमानत दे दी गई है।

9. उपरोक्त स्थिति को देखते हुए, हम अपील में हस्तक्षेप करने से इनकार करते हैं; लेकिन, उच्च न्यायालय द्वारा की गई गलती दोबारा न हो इसके लिए सही पैरामीटर बताना जरूरी समझा है।

10. अपील का निपटारा उपर्युक्त टिप्पणी के अधीन किया जाता है।

के.के.टी.

अपील निस्तारित।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मोनिका चौधरी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।